चूड़ी बाजार में लड़की

प्रेमपाल शर्मा

प्रो. कृष्ण कुमार द्वारा हाल ही में लिखी गई पुस्तक 'चूड़ी बाजार में लड़की : संस्कृति और शिक्षा की स्त्री-केन्द्रित विवेचना' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से आई है। इस पुस्तक की समीक्षा यहां पेश है। इस पुस्तक को इस वर्ष 'राजकमल प्रकाशन सृजनात्मक गद्य सम्मान' प्रदान किया गया है।

यदि आप लेखक हैं तो हर अनुभव और हर कदम आपके रचनाकार को समृद्ध करेगा। संभवतः कृष्ण कुमार लेखक पहले हैं शिक्षाविद् बाद में। उनके आरंभिक लेखन में मूलतः कहानी, रेखाचित्र, संस्मरण रहे हैं और उसी के समान्तर शिक्षा।

भारतीय शिक्षा में उनके योगदान को उनकी अनेक मौलिक किताबों के रूप में देखा जा सकता है। इसका एक प्रमाण 'मेरा देश तुम्हारा देश' और 'शांति का समर' जैसी पुस्तकें हैं, जो विवरणात्मक इतिहास से अलग सांप्रदायिकता के उत्स को खोजती हैं और अब मौजूदा किताब 'चूड़ी बाजार में लड़की : संस्कृति और शिक्षा की स्त्री-केन्द्रित विवेचना' समाजशास्त्र के बेहतर नमूने की तरह हमारे सामने है।

भारतीय समाज में लड़की की स्थिति पर इतनी गहराई से जांच-परख करती कोई पुस्तक पिछले कुछ बरसों में तो मेरी जानकारी में नहीं आई है। खाप के बहाने या अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में लड़कियों की रोक या जनसंख्या के आंकड़ों के बरक्स पिछले तीन दशकों से लगातार चलने वाली बहसों में एक कॉलम या लेख से ज्यादा गुंजाइश नहीं होती। अक्सर पहले से ही सिद्ध मान्यताओं और बातों को किसी घटना विशेष के माध्यम से जोड़कर लगभग लीपा-पोती के अंदाज में निपटा दिया जाता है।

इस पुस्तक के पीछे एक विचारक है, जो शिक्षक, शिक्षाविद् और कथाकार भी है। फिरोजाबाद का चूड़ी उद्योग तो मात्र एक खिड़की है उस पूरे समाज की स्थिति को सदियों के आर-पार जांचने के लिए। लेखक बचपन में लौटता है। ''रचना-प्रक्रिया के पहले, बहुत पहले, कोई भी कृति एक कारण अथवा चेतना का प्रस्थान-बिन्दु तो मांगती ही है। इस पुस्तक का कारण फिरोजाबाद की दस वर्ष पुरानी यात्रा है।'' लेखक इस विषय पर अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए लिखते हैं, ''...कृतज्ञता का ज्ञापन मैं महादेवी वर्मा के प्रति करना चाहूंगा। उनका निबंध 'संस्कृति का प्रश्न' मुझे बी.ए. के दिनों में मेरे प्रिय शिक्षक प्रोफेसर चन्द्रभानधर द्विवेदी ने पढ़ाया था। उसमें प्रयुक्त अवधारणाओं के ढांचे की छाप मेरे मन पर लगातार बनी रही है। इस पुस्तक के लेखन में महादेवी की अमर गद्य कृति 'शृंखला की कड़ियां' एक यक्ष प्रश्न बनकर मेरी समझ को कुरेदती रही है।'' (पृष्ठ 147)

कृष्ण कुमार काफी धीरज से देखते और उसे गुनते हैं। इसी गुनने में उनका लेखन समाज-वैज्ञानिक विचार परम्परा को भी साधते चलता है। इसलिए उच्च समाज-वैज्ञानिक मानकों को सहज ही उत्तीर्ण करता उनका लेखन कथा शैली के साथ भी बुना होता है। हिन्दी में समाज-वैज्ञानिक लेखन की स्थिति एकदम ही दीन-हीन हैं। दुर्भाग्य है कि उत्तर-औपनिवेशिक भारत में हम आज तक विचारवान, सक्षम और मौलिक रूप से समाज-वैज्ञानिक लेखन ईजाद नहीं कर पाए हैं। इसलिए हिन्दी में उपलब्ध ज्यादातर समाज-वैज्ञानिक लेखन निस्तेज, नीरस और निष्प्राण लगता है। कृष्ण कुमार की प्रगाढ़ और आत्मीय भाषा भरोसा दिलाती है कि हिन्दी में मताग्रहों से दूर होकर भी विवेक को मथते हुए और संवेदनशीलता को संजोते हुए मौलिक रूप से विचार करना संभव है।

लेखक परिचय

कथाकार एवं लेखक हैं। शिक्षा पर लेखन एवं चिन्तन एक प्रिय विषय है। रेल्वे में काम करते हैं।

स्त्री विमर्श पर हिन्दी में लेखन यूं तो काफी हुआ है। पर स्त्री-जीवन को दमित करने वाले और स्त्री-अनुभव को प्रभुत्व के सांचे में ढालने वाले रूपकों पर शायद ही इतना कल्पनाशील मनन हुआ हो। सड़क, चूड़ी, साड़ी, सैंडल, सिंदूर इत्यादि नितांत भौतिक प्रतीकों में दिए अर्थों को उद्धरित करते हुए वे नया संकेत शास्त्र (Semeiotics) रचते दिखते हैं। यही वह संकेत शास्त्र है जो सामाजिक जीवन में स्त्री को बांधता है। उसे एक पुरुषवादी समाज में अन्ततः कमतर यो भोग्या की हैसियत प्रदान करता है। इस संकेत शास्त्र को सामाजीकरण प्रक्रिया में स्त्री भी अपने बचपन से अंगीकृत करती है और उसे सामान्यतया उचित मानने लगती है।

इस किताब में फिरोजाबाद के चूड़ी उद्योग को ही नहीं, उत्तर प्रदेश की गरीबी, जर्जर शिक्षा व्यवस्था और इन सबके बोझ से सबसे ज्यादा पिसती और लगभग दबी लड़की की एक-एक सांस को सुना जा सकता है। ''हमारे सामने लगी हुई 'अनौपचारिक' कक्षा में लगभग सौ बच्चे फर्श पर बैठे थे। उनके छोटे-छोटे शरीरों, कपड़ों और कातर चेहरों में उनकी जिंदगी को परिभाषित करने वाली गरीबी और लाचारी अंकित थी। इन नन्हे बच्चों के चेहरे जैसे एक सड़क या मैदान बन गए थे, जिस पर पूरे शहर और देश में व्याप्त विषमता और दरिद्रता की क्रूरता साक्षात खड़ी थी। अनौपचारिक शिक्षा गरीब बच्चों के लिए ही निर्धारित है, पर फिरोजाबाद की भीषण गरीबी में उसका अर्थ उस शाम इतना ही था कि सर्व शिक्षा अभियान के तहत आने वाले कई अधिकारी, आगंतुकों की तरह हम लोग उन बच्चों के बीच जा पहुंचे थे और अब हमें इस मुलाकात को किसी-न-किसी तरह सार्थक बनाना था या कम से कम आधा-पौन घंटा चल सकने वाली कोई आकृति देनी थी।'' (पृष्ठ 91) यह वर्णन बताता है कि स्त्री की सामाजिक हैसियत के बरक्स जहां शिक्षा को उन्हें आत्म-गरिमा, आत्मविश्वास और आलोचनात्मक नजरिए से परिपूर्ण बनाना चाहिए वहीं यह शिक्षा उन्हें यथास्थिति में बनाए रखने की जिम्मेदार बनती है।

भारतीय स्त्री के नख-शिख से लेकर पहनने-ओढ़ने की हर वस्तु पर उन्होंने मंथन किया है। विशेषकर शहरी जीवन की महिलाओं की ऊंची ऐड़ी की चप्पलों पर उनकी टिप्पणी देखिए, ''जब कोई औरत ऊंची ऐड़ी की चप्पल पहनकर चलती है तो उसके दोनों पैर अस्वभाविक मुद्रा में मुड़ी हुई अवस्था में रहते हैं। पैरों की उंगलियां जमीन के करीब और ऐड़ी जमीन से काफी ऊपर रखने में पैर का बीच वाला हिस्सा एक लहर की तरह वक्र हो जाता है। वक्रता से पैरों में पैदा होने वाले तनाव को घुटनों और जांघों की हड्डियों को सहारा देने वाली मांस-पेशियां सहती हैं। ऐड़ी को एक ऊंची और संकरी जगह पर रखने के लिए संतुलन बनाने के प्रयास में देह इस तरह मुड़ जाती है कि वे अंग, जो स्त्री की कामोपयोगिता के पारंपरिक प्रतीक रहे हैं, उभर आते हैं और परंपरागत पुरुष दृष्टि के लिए देह का आकर्षण बढ़ जाता है।''(पृष्ठ 86)

इसी क्रम में वे स्त्री के सिंदूर और चूड़ी पहनने को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखते हैं। ''अपने सीमित और सटीक अर्थ में सिंदूर व चूड़ी लड़की के विवाहित होने की सूचना देते हैं। इस सूचना को पाने वाला व्यक्ति समाज की मूल्य-रचना के हवाले से यह जानता है कि लड़की विवाहित है या नहीं, इस बात की सूचना उसके शरीर पर चिह्नित कर देना क्यों जरूरी है। इस प्रकार लड़की की देह पर चिपका या टांग दी गई सूचना, सूचित होने वालों में परिचित और अपरिचित अथवा रिश्तेदार या बेगाने का भेद नहीं करती। जाहिर है, सभ्यता ने यह बात, कि जिस लड़की को हम देख रहे हैं, वह विवाहित हो चुकी है या नहीं, हर किसी के संज्ञान में अविलंब बता देना जरूरी माना और बनाया है।'' (पृष्ठ 87)

चूड़ी का पूरा समाजशास्त्र यहां उपलब्ध है। शायद भारतीय साहित्य की किसी भी भाषा में आधुनिकता और परंपरा के बोझ से लदी भारतीय स्त्री के इन पक्षों पर इतनी गहरी संवेदनशीलता के साथ विचार नहीं किया गया हो।

''चूड़ी पहन लेने या पहनाए जाने की प्रक्रिया में होने वाली क्षणिक-सी रुकावट चूड़ियां धारण करने की सांस्कृतिक क्रिया का हिस्सा हैं। हर चूड़ी इस बात की सावधानी के साथ हाथ से गुजार कर कलाई तक पहुंचानी होती है कि वह पहने जाने के दबाव में टूट न जाए। चूड़ी एक ऐसी वस्तु है जो दो ही अवस्थाओं में रह सकती है- संपूर्ण या

खंडित। कांच की अन्य वस्तुएं, जैसे गिलास या तस्वीर का फ्रेम, चटख जाएं तो भी दरार के साथ बनी रह सकती हैं। चूड़ी के साथ ऐसा नहीं है। वह यदि पहने जाते वक्त खिंच गई तो टूट जाएगी। टूटी हुई चूड़ी सिर्फ फेंके जाने योग्य रह जाती है, उसका स्थान दूसरी चूड़ी को लेना होता है। चूड़ी के अस्तित्व का यह ध्रुवीकृत जीवन उसके पहने जाने के क्षण में जितनी स्पष्टता से व्यक्त होता है, उतना फिर कभी नहीं। पहनी हुई चूड़ियों में से ही कोई चूड़ी कभी किसी बर्तन या दीवार से टकरा जाए तो अपशकुन माना जाता है और उसका एहसास कराया जाता है। पहनते समय चूड़ी के चटक जाने का भावबोध गहनता से कराने के लिए भाषा की मदद ली जाती है और लड़की से कहा जाता है कि 'टूट गई' मत बोलो, 'मौल गई' बोलो क्योंकि टूटने में तोड़ी जाने का भाव निहित है जो विधवा हो जाने से जुड़े संस्कार का बोध कराता है। पहने जाते समय टूटी चूड़ी लापरवाही की घोषणा करती है।'' (पृष्ठ 83)

चूड़ी बाजार में लड़की
लेखक : कृष्ण कुमार
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
पृष्ठ : 148; मूल्य : 300 रुपये
ISBN : 978-81-267-2595-3

आभूषणों के संदर्भ में भी एक-एक नजरिए का कायल होना पड़ता है। ''आभूषणों में नकेल के आकार की नथ का चलन शादियों में देखने को मिल रहा है। क्रीम बनाने वाली लक्मे कंपनी का एक विज्ञापन एक बड़ी नथ पहने वधू को 'नई तर्ज की कामुक दुल्हन' की तरह पेश करता है। एक हिंसक सामाजिक परिवेश की रचना में ऐसे प्रतीकों और मुहावरों के जरिए स्त्री को पुरुष की दासी और उसके मनोरंजन के लिए एक खिलौने के रूप में प्रस्तुत करने का उद्योग चल रहा है। यह परिवेश लड़कों के मानसिक यथार्थ के केन्द्र में लड़कियों की एक रंगीन, लचीली गुड़िया जैसी छवि को स्थापित करने में मदद देता है। इस छवि में समाई लड़की खुद वही व्यवहार मांग रही होती है जो लड़कों के किशोर-कल्पनालोक में स्थापित हो चुका होता है।'' (पृष्ठ 37)

स्त्री के लिबास में उसका परिधान साड़ी भी उसे परिभाषित करते हैं। आंचल की भूमिका कृष्ण कुमार इन शब्दों में बयान करते हैं। ''साड़ी के आंचल की भूमिका भी इसी तरह की है। आंचल के साथ भी संस्कृति के अनेक प्रतीकार्थ जुड़े हुए हैं। इन प्रतीकार्थों को साधने की जटिल लिपि लड़की को स्त्री बनने के क्रम में समझना और अपनाना होती है। सिर से लेकर कमर तक आंचल की भूमिका के प्रतीकार्थों में स्त्री के यौन-जीवन और मातृत्व की संश्लिष्ट सामाजिक इबारत दर्ज है।'' (पृष्ठ 85) यह पुस्तक अपने समस्त विश्लेषण में स्त्री की गढ़ी गई छवि को जेण्डर के नजरिए से परखती है और यह बताते हैं कि यह एक सामाजीकरण की प्रक्रिया की देन है। जिसे स्त्री अपने बचपन से ही आत्मसात करने लगती है।

यों यह पुस्तक एक दीर्घ वैचारिक निबंध के रूप में सामने आती है, लेकिन उसके अन्दर चलने वाली कथाएं, यात्रा का विवरण उसे एक बेहद पठनीय कथा में बदल देता है। अपनी भाषा और शब्द चिह्नों के लिए अनूठे कथाकार के रूप में जाने जाने वाले कृष्ण कुमार का गद्य ही नया नहीं है, पूरी पुस्तक की सामग्री हिन्दी की इस विधा को कुछ और नाम देने की मांग करती है। गद्य के मौजूदा सांचों और खांचों से ऊपर एक प्रवाह है, जिसमें लेखक पूरी संवेदनशीलता के साथ बहता है। स्थितियों की पूरी भयावहता से आहत और पाठकों को भी उस दुःख में शामिल करता हुआ। परिस्थितियों की विषमता के और प्रभुत्वपूर्ण समाजीकरण के बावजूद स्त्री, प्रतिरोध और प्रतिकार भी कर रही होती है। यह सही है कि स्त्री का प्रतिरोध सामान्य शक्ल नहीं ले पाता है। फिर भी जगह-जगह स्त्री की अपनी ताकत, अपने विशिष्ट विन्यास में प्रकट होती रहती है। कृष्ण कुमार निश्चित ही दमनचक्र से प्रतिरोध कर अपने अंतःकरण की ताकत को दर्ज करवाने वाली महिलाओं पर भी कभी लिखेंगे, ऐसी उम्मीद जरूर करनी चाहिए। यहां कृष्ण कुमार का शिक्षाशास्त्र भारतीय स्त्री विमर्श में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हुए ऊंचाई हासिल करता है क्योंकि शिक्षाशास्त्र की एक भूमिका सामाजीकरण की विडंबनाओं को उजागर करने की भी है। ◆